A DANCING MYTH EXPLODED!

Km. Yamini Krishnamurti
D 1/39, Satya Marg
Chanakyapuri, New Delhi

Yamini Krishnamurti is the most significant exponent of the classical dance form in India thrown up by the post-Independence cultural renaissance. With a communicative power unrivalled on the contemporary stage, Yamini has put across to audiences all over the world the wonderful nuances of her art. Honours and distinctions have been showered on her - the Sangeet Natak Akademi Award is the latest; but, more than these distinctions, it is the fact that in India her name is synonymous with classical dance, that is her true accolade.

I want to share with your readers the joy of a lovely find which I have just made in the Tantric treasure-trove that is Bhaskara-Raya's commentary on "The One Thousand Names of the Goddess". This discovery explodes, once and for all, the vulgar myth how Parvati was defeated in a dance-contest with her husband, Shiva, because she could not or, rather, would not emulate him when he put up his right leg vertically in the posture known as "urdhwa tandava", the reason suggested being feminine prudery! This story has found a place in the local legend of the Chidambaram temple and is related with much male gusto, but is none the less a canard.

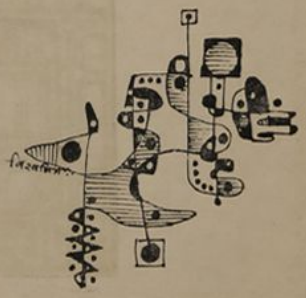

The Queen Of Dance

Actually there is no such name "as urdhwa tandava" in the Natya Shastra, the right relevant name being "Dandapada". This is the 82nd **Karana** as given in the list of the 108 dance poses in the Natya Shastra. It is the feminine figure that illustrates this pose as well as all the other poses as given in the Natya Shastra text as well as the Chidambaram Sculptures. Since this in itself may not be sufficient to disabuse the male mind of its prejudice in this regard, the following verse which Bhaskara-Raya quotes should serve to give the quietus to this unseemly story.

The verse concerned occurs in the explanation of the 734th name of the Goddess—"Nateswari", "the Queen of the Dance". The great savant and tantricist is definite in identifying the danseuse as "the spouse of the Chidambara dancer"; he also recalls the contest—evidently a convivial one between husband and wife—and the verse records that Parvati surpassed her lord in the execution of this pose, which is therefore termed as "super" dandapada ("ud-dandapada").

Marrying Sound to Sight

The original Sanskrit verse—in the sonorous Sragdhara measure—is so immaculately beautiful that I have no heart to demote it in an English translation. I must, however, suggest the lovely glints that emanate from the picture as depicted in this verse. The vertically lifted leg of Bhavani, as she imitated her husband's pose, "looked like a fabulous lotus flower rising from the pellucid well of her body's loveliness" and here, coming to the anklet-bells, the poet marries sound to sight by saying that "the gold-hued bells seemed and sounded like the ring of bees, smeared with pollen, round the stem of the lotusblossom". Rising like this, "the Goddess' foot in the super-Dandapada declared her triumph in the contest—it was her victory banner". A lovely concept!

The Interred Waist!

Since this is a "middle"—and for full measure—I shall conclude with a reference to the Goddess' middle as given in the Tantric texts. The Devi's waist is not seen—it is so slender: its existence can only be inferred from the fact that she wears a jewelgirdle: a piece of purely circumstantial evidence! Lovely is it not?

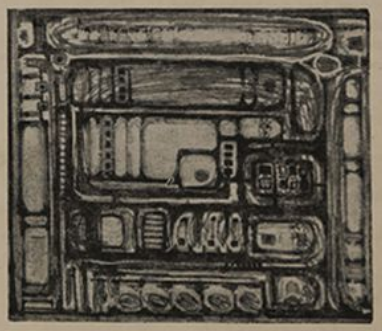

नाट्य शोध संस्थान : वर्तमान एवं भविष्य

□ प्रतिभा अग्रवाल

रंगक्षेत्र में एक केन्द्र पर रंग-कर्म सम्बन्धी साहित्य और ग्रन्थ उपलब्ध हो सके इसका अभाव अनेक वर्षों से खटक ही नहीं रहा वरन विकास में बाधक बना हुआ था।

कलकत्ता में 'उपचार ट्रस्ट' की ओर से नाट्य शोध संस्थान की स्थापना ने अब इस अभाव को दूर कर दिया है।

प्रस्तुत लेख इस संस्थान की अब तक की संक्षिप्त गतिविधियों को उजागर करता है जिसे लिखा है भारत की प्रमुख रंगकर्मी डॉ० प्रतिभा अग्रवाल ने जो एक परिपक्व नाट्य अनुवादिका के साथ इस संस्थान की निदेशिका भी हैं।

—सम्पादक

नाटक की रचना से लेकर उसके मंचन तक की सम्पूर्ण क्रिया पर्याप्त जटिल होती है, बहुमुखी एवं बहुआयामी होती है। एक ओर नाटक लिखा जाता है, विशुद्ध साहित्य की सृष्टि होती है, दूसरी ओर निर्देशक एवं अभिनेताओं के सहयोग से मंच पर रूपायित होकर वह दृश्य-काव्य का रूप ले अधिक हृदयग्राही बन जाता है। लेखन से मंचन तक की सारी क्रिया अपने में साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि के साथ ही वेशभूषा, रूपसज्जा, प्रकाश आदि के कलात्मक संयोजन को समेटे रहती है। नाट्य लेखन की सैद्धांतिक चर्चा बराबर होती रही है, किसी भी नाट्यकृति का मूल्यांकन भी सहज ही किया जाता रहा है। यद्यपि मंचित कृति का मूल्यांकन भी बराबर किया जाता रहा है तथापि यह कार्य अत्यंत कठिन है। एक तो इसलिए कि साहित्य, संगीत, नृत्य, दृश्य-सज्जा, वेशभूषा आदि विभिन्न तत्त्वों की जानकारी अपेक्षित होती है। दूसरे इसके सम्मिलित प्रभाव को आवेगहीन होकर विश्लेषित करना पर्याप्त कठिन होता है। भारत-वर्ष के वर्तमान रंगमंच का इतिहास करीब 150 वर्ष पुराना है। डेढ़ सौ वर्षों के रंगमंच के इस इतिहास के कुछ तथ्य उपलब्ध हैं, अधिकांश अतीत के गर्भ में विलीन हो गये। जो उपलब्ध भी हैं वे ऐसे बिखरे हैं कि इन्हें परिश्रम-पूर्वक खोजकर एकत्र किये बिना, पूर्वाग्रह से मुक्त होकर हर छोटे-बड़े काम के महत्त्व को स्वीकार किये बिना, वर्तमान गति-प्रगति एवं परिस्थिति के विना, किसी यथासंभव प्रत्यक्ष परिचय के बिना, किसी भी निर्णय पर पहुँचना असंभव है। नाट्य शोध संस्थान, कलकत्ता की स्थापना अपने देश की रंग-मंचीय परम्परा के विगत ऐश्वर्य का सही परिचय प्राप्त करने और वर्तमान गतिविधियों को भविष्य के लिए प्रामाणिक रूप में संचित करने के उद्देश्य से की गयी है। कार्य बहुत बड़ा है, अनेक लोगों के सहयोग से ही सम्पन्न हो सकता है, अनेक क्षेत्रों एवं अनेक स्तरों पर काम करके ही इष्टसिद्धि हो सकती है। आशा है संस्थान अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल होगा।

18 जुलाई सन् 1981 को कलकत्ता में स्थापित नाट्य शोध संस्थान में एक नाट्य पुस्तकालय तथा नाट्य-संग्रहालय गठित करने के साथ ही रंगमंच प्रामाणिक सामग्री एकत्र करने की योजना है। गोष्ठियों के माध्यम से नये-पुराने नाट्यकारों, निर्देशक तथा अभिनेताओं से परिचित होने का काम और उनके अनुभवों का लेखा-जोखा लेना इष्ट है। साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित विभिन्न नाट्य-रूपों, लोकनाट्य-रूपों के सम्बन्ध में प्रमाणिक सामग्री एकत्र करने का काम भी संस्थान करेगा। इन बातों को विस्तार से स्पष्ट करना और गत पौने दो वर्षों में संस्थान ने जो काम किया है उसकी जानकारी पाठकों को रुचिकर होगी, इस विश्वास के साथ आगामी अंश लिखा जा रहा है।

संस्थान के पुस्तकालय में विभिन्न भारतीय भाषाओं की महत्त्वपूर्ण नाट्य-कृतियों एवं नाट्य-लेखन तथा मंचन से सम्बंधित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह किया जाएगा। साथ ही नाट्य पत्रिकाओं के पुराने-नये अंक भी शोधार्थियों के लिए उपलब्ध होंगे। अभी फिलहाल हिन्दी, अंग्रेजी और बांगला के करीब 700 नाटक एवं अन्य ग्रन्थ उपलब्ध किये जा चुके हैं तथा इन भाषाओं की नाट्य पत्रिकाएँ भी संग्रहीत की जा चुकी हैं। इनैक्ट (अंग्रेजी) तथा नटरंग (हिन्दी) की पूरी फाइल उपलब्ध है, बहुरूपी (बांग्ला) के अनेक अंक उपलब्ध हैं। नेशनल सेंटर फॉर परफॉर्मिंग आर्ट्स की पत्रिका, मार्ग इनैक्ट, नटरंग, बहुरूपी, ग्रुप थियेटर, भरत नाट्यशास्त्री (मराठी) गॅम्बिर, टीडीआर आदि में से अधिकांश आ रही हैं, कुछ के लिए आदेश भेजा जा चुका है।

नाट्य संग्रहालय में नाट्य-दलों के परिचय, नाटककार, निर्देशक, अभिनेता तथा अन्य तकनीकी विशेषज्ञों के परिचय, मुखौटे, कैसेट पर नाटकों की रिकार्डिंग तथा रंगकर्मियों से बातचीत, महत्त्वपूर्ण नाट्य प्रस्तुतियों के मानक, छायाचित्र, विशिष्ट वेशभूषा आदि का संग्रह करने की योजना है। अभी फिलहाल कलकत्ता, दिल्ली बम्बई और पूना शहरों के नाट्यदलों एवं रंगकर्मियों सम्बन्धी सामग्री एकत्रित करने का काम शुरू किया गया है और करीब 120 फाइलें बनायी जा चुकी हैं जिन में करीब 150 दलों एवं व्यक्तियों से सम्बन्धित सामग्री एकत्रित की जा चुकी है। कुछ पूर्ण है, कुछ अपूर्ण। काम चालू है। आशा है सन् 1983 के अंत तक पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री एकत्र की जा चुकी होगी।

संग्रहालय में बाराणसी की रामलीला के करीब 40 मुखौटे तथा वहीं भारतेन्दु नाटक मंडली की कुछ पुरानी ड्रेसों के साथ ही बंगला एवं हिन्दी रंगमंच से सम्बन्धित छायाचित्र तथा अन्य रोचक सामग्री उपलब्ध है।

भरत नाट्यशाला, लोकमंच, पारसी रंगमंच तथा बंगला एवं हिन्दी की महत्त्वपूर्ण प्रस्तुतियों के करीब 24 मानक (मॉडल) भी उपलब्ध है।

मुख्यतः श्री खालिद चौधरी तथा श्री सुरेशदत्त द्वारा अत्यंत परिश्रमपूर्वक सही माप से बनाये गये ये मानक संस्थान के संग्रहालय ही नहीं, समस्त रंगजगत के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें सन् 1917 में स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा प्रस्तुत 'डाकघर', शंभु मित्र द्वारा निर्देशित 'रक्तकरवी' (1955), उत्पल दत्त के 'वल्लोल

(1965), श्यामानंद जालान के 'पगला घोड़ा' (1971), 'शुतुरमुर्ग (1967) शिवकुमार झुनझुनवाला के 'इस अंधेरे से' (1973) आदि के मंच का पूरा रूप आँखों के सामने मूर्तिमान हो उठता है। धीरे-धीरे इस विभाग में और मानक बनवाते चलने की योजना है।

संस्थान के पास अब तक करीब 50 कैसेट एकत्रित हो गये हैं जिनमें विभिन्न रंगकर्मियों से हुई बातचीत तथा परिसंवाद की चर्चा रिकार्डिंग के साथ ही करीब 20 देशी एवं विदेशी नाटकों के पाठ भी उपलब्ध हैं। परिसंवाद एवं बातचीत का लिप्यंतरण किया जा रहा है और निकट भविष्य में उन्हें पुस्तकाकार प्रस्तुत करने की योजना है।

गत पौने दो वर्षों में संस्थान में करीब 15 गोष्ठियाँ आयोजित की गयीं जिनमें नाटक में संगीत, रामलीला एवं जात्रा जैसे नाट्यरूपों, अमेरिका और पश्चिम जर्मनी के समकालीन रंगमंच की चर्चा के साथ ही फिदा हुसैन, सीता देवी, बादल सरकार, उत्पल दत्त, चन्द्रवदन मेहता, सुरेश अवस्थी, अमोल पालेकर, चित्रा पालेकर, अंगूरबाला आदि नाट्यकार, निर्देशक, अभिनेता, समीक्षक आदि से बातचीत की गयी, उनके अनुभवों को जाना गया। इन गोष्ठियों में कुमार राय, अजितेश बैनर्जी, तरुण राय, तापस सेन, खालिद चौधरी, शिवकुमार जोशी, कृष्ण कुमार, शमीक बैनर्जी, प्रभाकर माचवे, धरणी घोष, रुद्र प्रसाद, सेनगुप्त, अमर गांगुली, श्यामानंद जालान, विमल लाठ, शिवकुमार झुनझुनवाला, उषा गांगुली, पल्लवी मेहता आदि कलकत्ता के रंगकर्मी बराबर भाग लेते रहे हैं।

नाट्य शोध संस्थान में भारतवर्ष के नाटककारों एवं नाट्यदलों के नाम-पते की सूची तैयार की जा रही है, विभिन्न नाट्य-पुस्तकालयों में उपलब्ध ग्रन्थों की सूची भी उपलब्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है। कालांतर में संस्थान नाट्य सूचना केन्द्र के रूप लोगों को प्रामणिक जानकारी देने का कार्य कर सकें, यह ध्यान में है।

※ ※

* **डॉ. प्रतिभा अग्रवाल**
233/57, जगदीश बोस रोड,
कलकत्ता–700020